https://kalaasamiksha.in/
Kalaa Samiksha - Volume 01, No 05, PP 130-136 (Total PP 07)
ISSN : 3107- 4936(Online)
Frequency – Monthly

Importance of Merits and Demerits Described in Music Scriptures

Vineema Jangid[a]*, **Dr. Swati Sharma**[b]

[a] *Research Scholar, Department of Music Jai Narain Vyas University, Jodhpur*
[b] *Research Supervisor & Assistant Professor, Department of Music Jai Narain Vyas University, Jodhpur*
[a]*Email: vinimajangid@gmail.com*

Abstract

India has a rich tradition of music since the Vedic period. The Samaveda emphasizes the pervasive nature of music, along with the rules of presentation, outcomes, and related regulations. It stresses the strict adherence to guidelines for achieving harmony before and after musical performances. Knowledge of musical traditions, customs, and laws has been obtained from ancient times through musical texts. In Indian thought, there is a subtle and concise discussion of conduct, behavior, and influence based on the philosophical and practical principles of music. From these scriptures, we gain insights into musical merits (Gun) and demerits (Dosh) and characteristics according to time, era, and circumstances. In the art of music, the scriptural regulations of merits, demerits, and critical judgment establish the importance of these texts by providing ethical guidelines for the unimpeded experience of 'Rasa' (aesthetic delight) by the performer and by conveying moral ideals and inspirational elements to the general public, thereby easily reinstating Indian musical philosophy and culture. The scripture of each discipline directly defines its customs and policies and provides guidance to practitioners of that subject. In Indian music, we have gained knowledge of various musical experiments, customs, and disciplines, such as the ten characteristics (Dash Vidh Lakshan), Gamak, Meend, Khatka, Alpatva-Bahutva, Raga Prayoga, Dhruva Gaan, etc., to clarify Jati Gaan. In this sequence, ancient to modern musical texts also provide us with merits and demerits concerning various musical subjects, which are essential for the art of music.

2. वैदिक काल से ही भारत में संगीत की समृद्ध परंपरा रही है। सामवेद में संगीत की व्यापकता तथा साथ - साथ ही प्रस्तुति के विधान ,प्रतिफल एवं तत्संबंधी नियमो, प्रस्तुति के पूर्व तथा पश्चात् के क्रियाकलापों एवं स्वारस्यता प्राप्ति हेतु निर्दिष्ट दिशा निर्देश का कठोर पालन आवश्यक बताया है। संगीत संबंधी ग्रंथो में सांगीतिक परंपराओ की रीती - नीति एवं विधान का ज्ञान प्राचीन काल से ही प्राप्त होता आ रहा है। भारतीय विचारों में संगीत की दार्शनिक और प्रायोगिक विधानों के आधार पर आचार, व्यवहार और प्रभाव की सूक्ष्मता से सारगर्भित चर्चा प्राप्त होती है। इन्ही शास्त्रों से समय, काल तथा परिस्थिति के अनुसार हमें सांगीतिक गुण-दोष तथा लक्षण की चर्चा प्राप्त होती है| संगीत कला में व्यवहार एवं प्रस्तुति के प्रस्तोता द्वारा रस की निर्बाध अनुभूति हेतु नीति निर्देश एवं आमजन में नैतिक आदर्श एवं प्रेरक तत्वों का सम्प्रेषण कर भारतीय संगीत दर्शन तथा संस्कृति को सहज ही प्रतिस्थापित करने में गुण दोष तथा वाद निर्णय का शास्त्रोक्त विधान इन ग्रंथो की महत्वता को प्रस्थापित करता है। प्रत्येक विधा का शास्त्र उस विषय की रीति नीति को प्रत्यक्ष रूप से निरुपित करता है तथा विषय के साधकों को उस संबंध में दिशा निर्देश प्रदान करता है। भारतीय संगीत में संगीत विषय संबंधी अनेक प्रयोग, रीति तथा अनुशासन का ज्ञान हमें प्राप्त होता आया है। जैसे जाति गायन को स्पष्ट करने हेतु दश विध लक्षण, गमक, मींड, खटका, अल्पत्व- बहुत्व, राग प्रयोग, ध्रुवा गान इत्यादि। इसी क्रम में प्राचीन काल से आधुनिक काल के संगीत ग्रन्थ हमें विभिन्न संगीत विषयों के संबंध में गुण-दोष भी प्रदान करते है, जो संगीत विधा हेतु आवश्यक है।

Keywords: Merits and demerits, guidance, scripture, music, pervasiveness.

गुण दोष, मार्गदर्शन, शास्त्र, संगीत, व्यापकता।

Received: 8/4/2025
Published: 8/31/2025

---

* Corresponding author.

विभिन्न संगीत शास्त्रों में गुण और दोष का महत्व विशेष रुप से वर्णन किया गया है। यह संगीत के विकास और समाज में इसके सकारात्मक प्रभाव पर भी प्रकाश डालता है। यह गुण और दोष संगीत के शास्त्रीय और सांस्कृतिक पहलुओं को प्रभावित करते है साथ ही इसके सामाजिक और मानवीय महत्व को एक उचित रुप में भी विकसित करते है। सामाजिक, आर्थिक और मानवीय दृष्टिकोण से भी इन गुणों और दोषों का महत्व अतिआवश्यक है। गुण-दोष संगीत जगत में प्राचीन काल से ही श्रुति-परंपरा के द्वारा चले आ रहे हैं, जिनमें यदा-कदा प्रतिभा संपन्न कलाकार अथवा शास्त्रकार समयकाल की आवश्यकता अनुसार बदलाव भी करते आये है। सामान्यतः हम वैदिक काल से ही संगीत के गुणदोष का प्रारंभिक रूप देख सकते हैं।

हमारे जीवन की प्रत्येक स्थिति में गुण व दोष किसी न किसी रूप में सामने आते ही रहते हैं। गुण-दोष का तात्पर्य किसी व्यक्ति या वस्तु की खूबियों और कमियों अर्थात दोनों पक्षों के भावों से हैं। संगीत में गुण-दोष की इस चर्चा का आरंभिक संक्षिप्त रूप हमें नारदीय शिक्षा में प्राप्त होता है।

गुणात प्रवर्तते .... समासतः ।। नाट्यशास्त्र अध्याय 33 श्लोक 1

अर्थात जहां गुणों से गान का आरम्भ होता है और वहीं दोष से उसका निराकरण होता है, अतः गायन को समझने की प्रक्रियाँ में गुण-दोष को प्रयत्न करके जानना चाहिए।

संगीतं मोहिनी .... फलम। लक्ष्य संगीत

अर्थात योग्य रस, भाव, भाषा, राग अंगों की साधना को साधते हुए जो गायक गाता है, उसका गेय संगीत सभी श्रोताजनों के मन को जीतने में अवश्य सफल होता है। स्वभावतः हम देखते हैं कि किसी भी प्रकार की गायन वादन क्रिया में एक आचार्य उस गीत के अंतर्गत उसकी समता को ढूंढता है, एक पंडित उसमें साहित्य को देखता है, स्त्रियां भी अपने स्वभाव के अनुसार मधुरता की खोज करती है। इन सभी रूपों का दर्शन हमें आज भी समाज के लोगों में देखने को मिलता है। गुण-दोष का संक्षिप्त रूप हमें सर्वप्रथम नारदकृत "नारदीय शिक्षा" में प्राप्त होता है।

नारदीय शिक्षा की तृतीय खंडिका में गान के गुण व दोष का विवेचन इस प्रकार पाया जाता है-

लौकिकवैदिकंचगानदशगुणंयुक्तंतुवेदिकार्यमित्युच्यते"

नारदीय शिक्षा में गीत के दस गुण बताएं गए हैं जो इस प्रकार है- रक्त, पूर्ण, अलंकृत, प्रसन्न, व्यक्त, विकृष्ट, लक्षण, सम. सुकुमार, और मधुर। उपर्युक्त दस गुणों के अतिरिक्त नारद ने 10 गीत दोष भी बताए हैं।

साथ ही नाट्यशास्त्र, संगीत मकरंद, संगीत रत्नाकर, संगीत समयसार इत्यादि ग्रंथो में भी कालक्रम तथा परिस्थिति के अनुसार संगीत के प्रत्येक वर्ग हेतु गुण दोष की चर्चा की है। नाट्यशास्त्र में भरतानुसार कंठ के गुण व दोष का प्रतिपादन किया गया है संगीत के प्रकीर्णाध्याय में कंठ के 15 गुण व दोषों का उल्लेख किया गया है, साथ ही में नायक के 22 गुण व 25 दोषों का भी उल्लेख किया गया है।

ऐतिहासिक संगीतशास्त्र के अध्ययन स्रोत में पांडुलिपि, भाषाशास्त्र, चित्र, लेख-आलेख इत्यादि शामिल है। संगीत कला गुरूमुख द्वारा दी गई शिक्षा है अतः एक गायक अपने गुरु के द्वारा प्रदर्शित गुणों-अवगुणों को भी सहजता अपने गायन में समाहित कर लेता है। अक्सर हम घरानों में देखते हैं कि किसी एक क्रिया या गाने-बजाने की एक विशेष तकनीक पीढ़ियों से चलती जाती है। इसमें शिष्यों द्वारा जिस गुण को देखा जाता है उसे अपना लिया जाता है।

गुण-दोष की अपनी ही महत्ता है- जिस प्रकार सामान्य जीवन में किसी भी व्यक्ति के गुणों की चर्चा की जाती है, तो उसमें स्वतः ही सकारात्मक विचार प्रवाहित होने लग जाते है और वह आगे अधिक नया सीखने का प्रयास करता है। दोष ज्ञात होने पर भी इसे सकारात्मक रूप लेकर उसका निराकरण किया जाता है।

जैन आचार्य पार्श्वदेव द्वारा लिखित संगीत समयसार में कुल दस अध्याय हैं। ग्रन्थ के नौ अधिकरणों के अंतर्गत संगीतशास्त्र के गूढ़ और सूक्ष्म सिद्धान्तों का विषद निरूपण प्राप्त होता है। जैन आचार्यो द्वारा 'संगीतशास्त्र' विषयों पर लिखे गए विभिन्न संगीत ग्रंथों में से 'संगीतसमयसार' प्राचीनतम है। 'संगीतरत्नाकर' के जैन टीकाकार महाराज सिंहभूपाल (14वी शती ई) ने भी 'संगीतसमयसार' से अनेक उदाहरण दिये है| दिगम्बर मुनि पार्श्वदेव ने भी इस विषय पर विस्तृत प्रकाश डाला है कि संगीत विधा में प्रदर्शन के साथ-साथ गुण दोषों के द्वारा एक शास्त्रसम्मत मार्ग प्रस्तुत किया गया है। अर्थात यह प्रदर्शनकारी विधाओं के मार्गी जनों द्वारा एक लिखित दस्तावेज है, जिसके माध्यम से प्रदर्शनकलाओं में एक सुधारात्मक स्वरुप प्रकट होता है। इन तथ्यों को सम्मुख रखा है, जिसका वर्तमान समय में नितांत अभाव है | ग्रन्थ में वर्णित गुण तथा दोषों का वर्णन इस प्रकार दिया गया है |

<u>गायक के गुण</u>

अनिन्द्याश्चैव .... उदाहृतः ॥

अनिन्ध्य वर्ग अर्थात गायक के 17 गुण निम्नानुसार वर्णित है -

क्रिया पर वह है जो शास्त्रों में दिए गए विभिन्न निर्देशों का प्रयोग कर मार्ग और देशी संगीत को बिना किसी दोष से गाता है। क्रमस्थ वह है जो उत्तम से भी उत्तम प्रबंध को क्रमपूर्वक प्रतिरूपक पर्यन्तगाता है। गतिस्थ वह है जो कंठ के अधीन होने के कारण लक्षणयुक्त गमकों का प्रयोग अलग-अलग रूपों में कर सकता है। सुघट वह है जो स्वर वर्ण और ताल की घटना को गायन में सुन्दर ध्वनि से युक्त करता है। सुसन्च वह है जो सुस्वस्थ होने के कारण सरलता से प्रत्येक राग की आलप्ति करने में योग्य हो। शिक्षाकार वह है जो शुद्ध और छायालग रागों में शीघ्रता से विषम और प्रांजल गीत सीख लेता है। रसिक वह है जो अच्छे संगीत को सुनकर प्रफुल्लित हो जाए एवं नयन आनंद से अश्रु पूर्ण हो जाए। भावुक वह है श्रोता के मन को जानकर निरस को सरस और भावहीन को भाव युक्त करने वाला हो। मनोहर गीत के द्वारा श्रोताओ आशय को जानकर रंगस्थल में गीत की रचना करने वाला गायक हो। पररीतिज्ञ वह है जो आलप्ति में गीत और शरीर की चेष्टाओं का अनुकरण करने वाला और गीत के उत्तम गुणों का ज्ञान रखने वाला हो। सुगंध वह है जो देर तक विषम और प्रांजल गीत गाते रहने पर भी जिसका कंठ मधुरता यूक्त रहे। आलप्ति गायन वह है गीत की तुलना में अधिक सुखदायक आलप्ति करने वाला गायक हो। रूपक गायन वह है जिसका गीत आलप्ति की अपेक्षा भी अत्यंत मनोहर हो। चौपट वह है जो शुद्ध और छायालग रागों में आलप्ति युक्त गीत गाता है। रीताल वह है जिस गायक की ध्वनि और शरीर में विभिन्न देशों की रीतियों का स्पर्श होता है। विबन्ध

वह है जो ध्वनि में अनेक प्रकार से विविध गति का चिंतन करता है। मिश्र वह है।,, एक राग में दूसरे राग की छाया का प्रयोग कर निर्दोष रूप में और कौशलता पूर्वक करता है।

गायक के दोष

सन्दष्टः .... गीतवेदिभिः ॥ (संगीत समयसार)

निन्द्य के अंतर्गत 19 भेद अर्थात गायक के 19 दोष निम्नानुसार वर्णित है -

संदष्ट- दांत पीसकर गाने वाला।

कम्पित- कम या अधिक स्वर लगाने वाला (कनसुरा) ।

भीत- भयभीत होकर गाने वाला।

शंकित- शंकाकुलहोकर गाने वाला।

सानुनासिक- नाक से गाने वाला।

उद्धुष्ट- सब ओर से क्षुब्ध होकर गाने वाला।

काकी- कौवे जैसी स्वर वाला।

सूत्कारी- सू-सू कर के गाने वाला।

अव्यवस्थित- स्थानों में व्यवस्था न रखने वाला।

कराली- मुँह फाड़ के गाने वाला।

झोबक- आँखे और नाक फुला कर गाने वाला।

वक्री- गर्दन टेढ़ी करके गाने वाला।

प्रसारी- गीत को फैलाकर गाने वाला।

निमिलक- आँखे बंद करके गाने वाला।

निरावधानक- गीत पर एकाग्र न रहने वाला।

विताल- बेताला गाने वाला।

उष्ट्रकी- ऊँट की भांति बैठकर गाने वाला।

उद्घड- बकरी की भांति ठोड़ी चलाकर गाने वाला।

मिश्रक- जो शुद्ध राग में छायालग का मिश्रण और छायालग राग में शुद्ध राग का मिश्रण करता है।

महत्ता-

संगीत शास्त्रों के अनुसार गुण और दोष अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन्हें संगीत की सही रचना और प्रदर्शन को सही मान्यता देने और अध्ययन की दृष्टि से आवश्यक माना जाता है। संगीत मानव के मन में स्थित समस्त

भावों राग, द्वेष, काम-मद, लोभ-मोह, आशा, निराशा, आदि सभी से ऊपर उठकर सीधे अंतर्चेतना को जागृत करता हुआ मानव के हृदय को आलोकित करता है। संगीत द्वारा मधुर भावों की अभिव्यक्ति के कारण गायक एवं श्रोता में सीधा जुड़ाव रहता है। इस हेतु गुण-दोष विचार द्वारा संगीत मनीषियों ने कला जगत के साथ-साथ सामाजिक जीवन में भी अनुकूल सन्दर्भों को परिलक्षित किया है। संगीत समयसार आदर्श प्रस्तुत करता है।

आज के वैज्ञानिक युग में भी गुण दोष परंपरा का अपना एक महत्व है। गुण और दोष न केवल संगीत के सन्दर्भ में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं बल्कि इन्हें समझने से संगीतकार और श्रोता दोनों को संगीत की बारीकियों को समझने में मदद मिलती है। यह गुण संगीत के प्रभावी और सुरक्षित प्रदर्शन को संभव बनाते हैं। दूसरी ओर दोष गलतियों और कमियों को संदर्भित करते हैं। गुणदोष श्रोताओं और कलाकारों को आकलन करने की अनुमति देते हैं, जिससे उन्हें अपनी गलतियों को सुधारने का अवसर प्राप्त होता है। संगीत में दोष गायक व वादक के विकास हेतु महत्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि वे शिक्षा और संशोधन के लिए मार्गदर्शन का कार्य करते हैं। संगीत शास्त्रों में गुणों और दोषों का महत्व न केवल रचनात्मक प्रक्रिया में देखा जाता है, बल्कि ये संगीत की प्रयोगात्मक प्रक्रिया में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संगीत एक प्रदर्शनकारी कला है, इसके अंतर्गत कला प्रत्येक पहलू का बारीकी से विश्लेषण किया जाता है। किसी संगीत सभा में मंच के सम्मुख विराजे श्रोतागण, मंच पर आसीन प्रत्येक व्यक्ति तथा मंच पर क्रियाशील प्रत्येक गतिविधि को अपने-अपने नज़रिये से देखते हैं। श्रोतागणों में उपस्थित भाँति- भाँति के विचारों व भावों के व्यक्ति अपने-अपने नजरिए से अपने भावों के अनुकूल रसास्वादन करते हैं। सभा में विराजित कोई श्रोता गायक वादक के रंग रूप से तो कोई पहनावे से मोहित हो जाता है, कोई श्रोता उनके सुरीलेपन से, कोई श्रोता लयकारी से तो कोई श्रोता उनके हाव-भाव व कला प्रदर्शित करने के ढंग से आनंद प्राप्त करता है। इस प्रकार हम देखते हे कि संगीत कला के विभिन्न पहलुओं से भिन्न-भिन्न प्रकार के श्रोता अपनी रुचि अनुसार रसास्वादन करते हैं। हमारे प्राचीन और मध्यकालीन ग्रंथकारों ने अपने ग्रंथो में गायको, वादको के गुण-दोष का वर्णन सहज व सुंदर ढंग से किया है। जो हमें उस समय प्रचलित वस्तु तथा स्थिति से अवगत कराते है। इनका पालन कर जो संगीतज्ञ अपनी प्रस्तुति देता है उसकी एक अमिट छाप श्रोताओं के मानस पटल पर शीघ्र ही छप जाती है, इसके विपरीत जो गायक वादक दोष युक्त प्रस्तुति देते हैं, उनकी दोष युक्त छवि या उनकी प्रस्तुति के तत्व दर्शकों की स्मृति में दीर्घकाल तक रहते हैं। सामान्यतः हमारा दैनिक जीवन भी गुण दोष से अछूता नहीं रह पाता है। दैनिक प्रक्रिया में भी गुण-दोष का वैचारिक विश्लेषण कार्यरत रहता है। इससे किसी भी व्यक्तित्व या कला इत्यादि को नवनीत कर उसके गुणों, अच्छाइयों को परिशोधित कर दोषों का निराकरण किया जा सकता है। गुण दोष का महत्व किसी भी कला को और समृद्ध व संपन्न बनाना है। जिससे कला व साहित्य के हर एक तत्व को सहजता व सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किया जा सके।

मनोबल में बढोतरी - गुणों के द्वारा एक कलाकार की छवि सकारात्मक दिशा की ओर अग्रसर होती है। जिससे उसका मनोबल भी बढ़ता है, तथा साथ ही वह बिना संकोच, भय व हिचकिचाहट के अपनी कला को बेहतर रूप से प्रदर्शित करने का प्रयास करता है। किसी सांगीतिक शोध का सामाजिक पहलू यह भी है, कि संगीत की परंपरा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित अवश्य हो।

कला व कलाकार का सम्मान

कला और कलाकार समाज में एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते है। वे समृद्धि व संस्कृति के प्रतीक होते है। जो समाज को सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से समृद्ध करते है। हालांकि सम्मान देने के लिए केवल

कला और कलाकार का नाम मात्र ही काफी नहीं होते, बल्कि उनके द्वारा प्रदर्शित कला, उनका व्यवहार और उनकी कला के प्रदर्शन का तरीका भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इन सभी का श्रोताओं तथा संगीत प्रेमियों द्वारा बारीकी से मूल्यांकन किया जाता है। इस मूल्यांकन में उनकी कला व व्याक्तित्व के हर एक पहलू पर ध्यान दिया जाता है और साथ ही टीका टिप्पणी भी की जाती है। एक कला और कलाकार के सम्मान की स्थिति में गुणों का महत्वपूर्ण स्थान है। एक कलाकार की उत्कृष्टता; संवेदनशीलता और समर्पण के साथ बनाई गई कला का सम्मान करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। इससे उसमें एक नई ऊर्जा का प्रवाह होता है।

प्रायः हर एक व्यक्ति समाज का अंग है, जो कलाकार संगीत शास्त्रों में प्रयुक्त गुणों का अनुसरण करता है, उन्हें एक आदर्श गायक तथा विषय ज्ञाता के रूप में देखा जाता है। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूंगी कुछ समय पूर्व ही शोधार्थी ने विदुषी कौशिकी चक्रवर्ती जी का जोधपुर में आयोजित साक्षात संगीत समारोह सुना। उसमें शोधर्थी ने कोमलता मधुरता विनम्रता, सौंदर्य तत्व, लालित्य तथा मनोरमता के साक्षात् दर्शन प्राप्त किये। उनमें किसी भी प्रकार का मुद्रा दोष नहीं देखा। उनका खिलता मुस्कुराता चेहरा अपने आप में एक मनोरंजनदायक तथा आनंद स्वरूप था। उनके आचार- व्यवहार से वहां विराजे सभी श्रोतागणों व विद्वज्जनो की आंखों में एक सम्मान की झलक दिखाई पड़ रही थी। यह सब कुछ अपने आप में एक मनोरम वातावरण की निर्मिती कर रहा था। इन गुणों द्वारा वहाँ उपस्थित श्रोताओं के मन में उनकी एक अमिट छवि स्थापित हो गई। उनकी प्रस्तुति के समय सहजता व सुंदरता युक्त गायन निश्चित रूप से सभी को मोहित कर गया व साथ ही सीखने का एक प्रकल्प बन गया।

गुणो के साथ-साथ ही दोषों का भी अपना महत्व है। एक कला या कलाकार के दोषों को नकारना नहीं चाहिए, बल्कि उन समस्याओं को समझकर उन्हे उचित मार्गदर्शन कर नया रूप प्रदान करना चाहिए। दोष को सामान्यतः एक नए स्तर पर पहुँचने का माध्यम बनाना चाहिए, जो एक कलाकार को अपनी कला में सुधार करने का अवसर देता है। वास्तव में गुण-कला और कलाकार को निपुण करने व दोष स्वआकलन द्वारा मार्गदशन प्रदान करते है। इससे न केवल कला के स्तर को ऊँचा किया जा सकता है, बल्कि इससे कला और कलाकार की प्रगति में भी सहायता मिलती है।

अंत मे गुण और दोष दोनो ही संगीत में महत्वपूर्ण स्थान रखते है। गुणो का संचय संगीतकार के कलात्मक विकास में मदद करता है, तो दोषों को ज्ञान कला को नए आयाम प्रदान करता है। इस प्रकार गुण और दोष संगीतकार के लिए महत्वपूर्ण विषय है, जो संगीत को गहराई से समझने में मदद करता है।

इसलिये गुण दोष का ज्ञान भी सभी संगीत विद्यार्थियों को प्रारंभ से ही प्रदान किया जाना चाहिए। जिससे वे प्रारंभिक स्तर से ही उचित मार्गदर्शन प्राप्त कर, दोष मुक्त प्रदर्शन हेतु अपनी प्रतिभा को एक नई दिशा प्रदान कर सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची-

1. शास्त्री बाबुलाल शुक्ल,(2015) 'नाटयशास्त्र' , हिन्दी संस्करण,चौखम्भा संस्कृत संस्थान
2. भातखंडे वि. ना. (1981) श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम, मध्यप्रदेश, भोपाल हिन्दीग्रंथ अकादमी
3. गर्ग लक्ष्मीनारायण,(2022) "निबन्ध सगीत" , उ.प्र सर्गीत कार्यालय हाथरस
4. चौधरी सुभद्रा,(2008) 'संगीत रत्नाकर' सरस्वती व्याख्या, , नई दिल्ली, प्रथम संस्करण
5. राधा पब्लिकेशन्स

6. बृहस्पति आचार्य,(1947) 'संगीत समयसार' , दिल्ली, प्रथम संस्करण- श्री कुन्दकुन्द भारती
7. विरचिता भट्टशोभाकर,(2021) शिक्षा विवरणोवेता 'नारदीय शिक्षा' टीका संहिता, श्री पिताम्बरापीठ संस्कृत परिषद दातिया,
8. आत्म साक्षात्कार
9. 'यमन' अशोक कुमार,(2021) 'संगीत रत्नावली' अभिषेक प्रकाशन, प्रथम संस्करण
10. मिश्र लालमणि (2015) भारतीय संगीत वाद्य, नई दिल्ली,ज्ञानपीठ प्रकाशन
11. श्रीधर पराजपे शरदचन्द्र: (1992) संगीतबोध, मध्यप्रदेश, भोपाल हिन्दी ग्रंथ अकादमी
12. बंद्योपाध्याय श्री पद(1985) बी.संगीत भाष्य आर. पब्लिशिंग, नई दिल्ली
13. चौधरी सुभद्रा, (1988) : संगीत में अनुसन्धान की समस्याएं और क्षेत्र, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर
14. बृहस्पति आचार्य, संगीत समय सार टीका, नईदिल्ली, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
15. राजुरकर गोविन्दराव: (1982) संगीतशास्त्र पराग, राजस्थान, जयपुर, हिन्दी ग्रंथ अकादमी
16. सिंह ठा जयदेव (1994) भारतीय संगीत का इतिहास, कोलकाता, संगीत शोध संस्थान

पत्र पत्रिकाएँ -

1. कला प्रयोजन, अक्टूबर 2001, पश्चिम क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र, उदयपुर
2. कल्याण, जुलाई 2012, गीता प्रेस, गोरखपुर
3. संगीत मासिक, जनवरी 2013, संगीत कार्यालय, हाथरस
4. संगीत कला विहार मासिक, नवंबर 1990, गन्धर्व महाविद्यालय मंडल